HindiTech
A Blind Double-Peer Reviewed Bilingual Web-Research Journal

जन की भाषा में जन का रचनाकार : कृशन चंदर

मृत्युंजय प्रभाकर

mrityunjay.prabhakar@gmail.com

रंगकर्मी, कवि एवं वर्तमान में विश्वभारती, शांतिनिकेतन के संगीत भवन में थियेटर के असिस्टेंट प्रोफेसर

साहित्य समालोचना या आलोचना न मेरा काम रहा है और न ही मेरा पेशा. तंगहाली के दिनों में कुछ पुस्तक समीक्षाएं कुछ अख़बारों और पत्रिकाओं के लिए जरूर की हैं और बहुत मेहनत और ईमानदारी से की हैं, लेकिन उसे आलोचना या समालोचना की श्रेणी में तो कटाई नहीं रखा जा सकता है. खैर, एक पाठक के तौर पर साहित्य से लगभग दो दशक का रिश्ता रहा है और अपनी सीमित समझ के बावजूद रचनाओं और रचनाकारों को समझाने की कोशिशें जरूर की हैं और उसी कड़ी में कई रचनाकारों की दर्ज़नों किताबें एक परियोजना के तर्ज पर एक साथ पढने की कोशिशें ही हैं.

यूँ तो एक पाठक के तौर पर कृशन चंदर की लोकप्रिय रचनाओं क अपाठक और गुणग्राहक काफी समय से रहा हूँ और उनकी कई लोकप्रिय रचनाएँ यथा 'एक वायलिन समुन्दर किनारे', 'एक करोड़ की बोटल', 'एक गढ़ा नेफा में' आदि कई रचनाएँ युवा दिनों में ही पढ़ चुका था लेकिन उन्हें समग्र रूप से पढ़ने की यह मेरी पहली कोशिश है. इसी बहाने मैं कृशन चंदर के बृहत्तर लेखन से परिचित हो पाया.

खैर, अपनी अल्प समझ और अनुभव के अधर पर कहूँ तो किसी रचनाकार के समग्र लेखन की समालोचना करना उनकी रचनाओं के मार्फ़त उन्हें घेरने की कोशिश है. हालाँकि कई बार ऐसा भी होता है कि आप किसी रचनाकार को उनकी रचनाओं से घेरने के चक्कर में खुद ही उनके शिकार हो जाते हैं. कहने का मतलब यह कि जिन रचनाओं तक आप एक शिकारी की सतर्कता से पहुंचना चाहते हैं वह उलटे

आपका शिकार कर लेती है. मैं ईमानदारी से स्वीकार करूँ तो मेरे साथ यही हुआ है. मैं कृशन चंदर की रचनाओं से गुजरते हुए, उन्हें समझाने की नाकाम कोशिश करता हुआ उनमें पूरी तरह डूब गया हूँ और ऐसा डूबा हूँ कि शायद तभी उबार सकूँ जब इनसे भी बड़े रचनाकार और उनकी रचनाओं से मेरा पाला पड़े. तब तक तो मैं साहित्य अनुरागी के तौर पर कृशन चंदर को अभिभूत होकर ही देखता रहूँगा इसलिए मैं इस पर्चे में जो कुछ भी कहूँगा वह कोई आलोचना या समालोचना हो ही नहीं सकती. आप इन्हें एक साहित्यिक भक्त की श्रद्धा भले कह सकते हैं.

जब मेरी कोई खास समझ कला, साहित्य, राजनीति, समाजशास्त्र आदि को लेकर नहीं बनी थी तब से ही मेरा यह यकीन रहा है कि भारत में आजादी से पहले पैदा हुई पीढ़ी ही सर्वश्रेष्ठ पीढ़ी थी. ऐसे लोग जिन्होंने भारत को एक उपनिवेश के तौर पर देखा और उससे मुक्ति की छटपटाहत लिए अलग-अलग मोर्चों पर अलग-अलग तरीकों से संघर्ष करते रहे. मैं यहाँ सिर्फ राजनीति की बात नहीं कर रहा बल्कि संस्कृति, साहित्य, ज्ञान और दूसरी विधाओं में भी इस पीढ़ी ने बहुत बड़े कमाल का काम किया और खुद को इतना सक्षम बनाया कि इनकी टक्कर की आजादी के बाद पैदा हुई कोई दूसरी पीढ़ी पैदा नहीं हो पाई. हालाँकि यह मेरा पूर्वाग्रह भी हो सकता है लेकिन न सिर्फ आज भी मैं इस पर कायम हूँ बल्कि कृशन चंदर को समग्रता में पढ़ने और समझने के बाद मेरा यह विस्वास और भी बढ़ गया है. इससे आप समझ सकते हैं कि एक लेखक-रचनाकार के तौर पर कृशन चंदर मेरे लिए कितना मायने रखते हैं.

कृशन चंदर पर बात शुरू करने के पहले मैं यह स्पष्ट कर दूँ कि मैं यह भी मानता हूँ कि आजादी के पहले और बाद के भारतीय समाज को समझना हो तो किसी समाजशास्त्री या इतिहासकार से ज्यादा हमारी मदद प्रेमचंद और कृशन चंदर जैसे लेखक कर सकते हैं. इनकी रचनाओं की मार्फ़त आप तत्कालीन भारतीय समाज की एक पूरी तस्वीर बना सकते हैं. प्रेमचंद जहाँ ग्रामीण भारत और किसानों की दुनिया को समझाने में मददगार हो सकते हैं वहीँ कृशन चंदर शहरी जीवन और मजदूरों के संघर्षों से आपको अवगत कराते हैं. एक तरह से देखें तो यह दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं. एक हिंदी का कहानीकार और दूसरा उर्दू का अफसानानिगार. दोनों ही मशहूर. दोनों की ही दोनों भाषाओंपर अद्भुत पकड़ थी. प्रेमचंद ने जहाँ उर्दू में ही लिखना शुरू किया था वहीँ कृशन चंदर बाद के दौर में सीधे हिंदी में भी लिखने लगे थे. हिंदी और उर्दू का

ऐसा मिश्रण शायद ही किसी और लेखक में इतनी बारीकी से मिला हुआ दिखता हैं जितना की इन दोनों लेखकों में. और तत्कालीन भारतीय समाज की आत्मा अगर किन्ही लेखक ने पकड़ी है तो वह यही दोनों हैं. एक जिसने आजादी पूर्व के भारतीय समाज के ग्रामीण जीवन की जीवंत तस्वीर पेश की तो दूसरे ने आजादी पूर्व और बाद दोनों ही समय में भारतीय जनता की समस्याओं, उम्मीदों और भावनाओं से अपने अद्भुत किस्सागोई की मार्फ़त देश को अवगत करवाता रहा. इसीलिए मेरा मानना है कि प्रेमचंद और कृशन चंदर हिंदी और उर्दू की ऐसी कड़ियाँ हैं जो पूरे देश को जोड़ने का काम करती हैं. उनकी कहानियों की मार्फ़त हमें इस देश को बेहतर तरीके से समझाने की दृष्टि मिलती है. और मेरा मानना है कि वो दोनों ही ऐसा करने में इसलिए सक्षम हैं क्यूंकि वो जन की भाषा में ही जन की बात करते हैं.

इतनी सारी स्थापनाएं गिराने के बाद जाहिर है इस लेख में इन्हें उदाहरण सहित व्याख्यायित करने की जरूरत भी है क्यूंकि बिना आधार के फलसफे किसी काम के नहीं होते. यहाँ से मेरी मुश्किलें और भी बढ़ जाती हैं क्यूंकि कृशन चंदर पर बात कहाँ से शुरू की जाए यह मेरे लिए सबसे मुश्किल काम है. इसकी वजह है उनका विस्तृत और बृहद लेखन. उन्होंने अपने लेखन में इतने सारे विषयों, देशों, राज्यों, प्रजातियों, जातियों, पहचानों को एक साथ छुआ है कि उन्हें एक लेख में समेट पाना बहुत मुश्किल काम है. उन्होंने त्रासदी, सुखांत और व्यंग्य और पता नहीं किन-किन आस्वाद के अफ़साने और व्यंग्य लिख मारे हैं कि उन्हें देखने की समग्र दृष्टि विकसित कर पाना भी बहुत मुश्किल काम है. एक तो यह कि उन्होंने १०० से ज्यादा किताबें लिखीं हैं जो एक रचनाकार की सक्रियता का हाल अपने आप में बयान करता है. उसमें दर्ज़नों उपन्यास और ३०० से अधिक कहानियों के अतिरिक सैकड़ों व्यंग्य भी शामिल हैं.जाहिर सी बात हैं मैंने इनमें सारी रचनाएँ नहीं पढ़ीं हैं. मैं उनके कुल लेखन का शायद 10-15 फीसद हिस्सा ही मुश्किल से पढ़ पाया हूँ. यह भी वो जो आसानी से उपलब्ध है. इसीलिए आप समझ सकते हैं कि मेरे लिए उनके लेखन के बारे में कूई मुकम्मल राय बना पाना या उनके लेखन को समझाने का कोई सूत्र विकसित कर पाना कितना मुश्किल काम होगा.

आप उन्हें भारत-पाक विभाजन पर लिखी त्रासद और मानवीय स्तर पर भावपूर्ण अफ़साने लिखने वाले लिखने के लिए याद करें तो मुश्किल, आप उन्हें बंगाल के भयानक अकाल को केंद्र में रखकर अफ़साने

लिखने के लिए याद करें तो मुश्किल, आप उन्हें आजादी के दीवानों की कहानियां लिखने के लिए उआद करें तो मुश्किल, आप उन्हें शहरी मजदूरों के ऊपर अफसाने लिखने वाले लेखक के तौर पर याद करना चाहें तो मुश्किल, आप उन्हें स्त्री समस्यायों को केंद्र में रखकर कहानियां लिखने के लिए याद करें तो मुश्किल, आप उन्हें बच्चों की कहानियां लिखने के लिए याद करें तो मुश्किल, आप उन्हें बम्बई, दिल्ली, अमृतसर, बाराबंकी, लाहौर, पूंछ, कोलकाता, दीमापुर, कोरिया, चीन, जापान, अमेरिका की कहानियां दर्ज करने के लिए याद करें तो मुश्किल. यह मुश्किल त्यूं-त्यूं बढती जाती है ज्यूँ-ज्यूँ आप उनकी रचनाओं से गुजरते रहते हैं.

भारत में शायद ही कोई दूसरा रचनाकार होगा जिसने लगभग संपूर्ण भारत की कहानियां अपनी रचनाओं में दर्ज की हों. उनकी कहानियों के केंद्र में आप काश्मीर, जम्मू, पंजाब, लाहौर, अमृतसर, दिल्ली, बम्बई, विदर्भ, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, कोलकाता, असम, उत्तर-पूर्व और पता नहीं किन-किन जगहों और उनके समाज व लोगों की समस्याओं को पाएंगे. इतना ही नहीं उन्होंने तो पाकिस्तान, भूटान, कोरिया, जापान, चीन, ईरान और अमेरिकी समाज तक को अपनी रचनाओं के केंद्र में रखा है. इस तरह से देखें तो वे राष्ट्रीय परिधि से निकलकर अंतर्राष्ट्रीय परिधि में शामिल हो जाते हैं जिनकी चिंता के केंद्र में महात्मा गाँधी और कार्ल मार्क्स की तरह विश्व मानव हैं.

पिछले 20-25 सालों से हिंदी साहित्य में 'जादुई यथार्थवाद' शब्द की बहुत चर्चा हो रही है. इस शब्द और चर्चा का संदर्भ अक्सर ही 20वीं शताब्दी के आरंभ में लैटिन अमेरिकी देशों में विकसित और रचा हुआ साहित्य है जिसके नायक के तौर पर गेब्रियल गार्सिया मारक्वेज का नाम लिया जाता है. हालाँकि जिन कसौटियों पर उनके साहित्य को 'जादुई यथार्थवाद' की श्रेणी में रखा गया है अगर उनका आकलन करें तो हम देखते हैं कि भारतीय कथा साहित्य अपने आरंभ से ही उसमें आगे रहा है. आप चाहे पंचतंत्र की कहानियां लें या हितोपदेश की कहानियां लें या त्रिपिटकों की बात करें या फिर रामायण, महाभारत से लेकर अन्य महाकाव्यों की बात करें, इन तमाम रचनायों में 'जादुई यथार्थवाद' हमें भरपूर मात्र में नजर आता है. आधुनिक भारत में भी देखें तो 'चंद्रकांता संतति' जैसे उपन्यास इस श्रेणी में आसानी से चिन्हित किए जा सकते हैं. मैं मानता हूँ कि कृशन चंदर के लेखन का बड़ा हिस्सा न सिर्फ इस श्रेणी में आसानी से रखा जा

सकता है बल्कि 'एक वायलिन समुन्दर किनारे', 'एक गदहा नेफा में' या 'एक गदहे की आत्मकथा' व 'एक गदहे की वापसी', 'दूसरा पुरुष दूसरी नारी' आदि उनके कई उपन्यास 'जादुई यथार्थवाद' के सबसे आधुनिक और उम्दा उदाहरण हैं. उनकी कहानियों और उपन्यासों में जिस प्रकार कई बार गैर मानवीय पात्र भी केंद्र में होते हैं या कहानी का अविभाज्य पात्र होते हैं या अपनी कहानी दर्ज कर रहे होते हैं वह उनके लेखन को भारतीय परंपरा से तो जोड़ता ही है साथ ही साथ उनके लेखन को 'जादुई यथार्थवाद' की अनुपम अभिव्यक्ति भी बनाता है.

कृशन चंदर के लेखन की बड़ी खासियत यह भी है कि उनके लेखन में किस्सागोई भरपूर मात्रा में पाई जाती है. उनकी कहानिओं और उपन्यासों में दादा-दादी, नाना-नानी के साथ-साथ, एक कुशल किस्सागो द्वारा कहानी सुनाए जाने का आभास मिलता है, जो पढ़ने से ज्यादा सुनने का सुख देते हैं. एक लेखक के तौर पर उनकी लोकप्रियता के पीछे भी उनकी अद्भुत किस्सागोई ही है. और उनकी इस अनुपम किस्सागोई में सहायक साबित हुई उनकी सहज और आमफहम भाषा जो उन्होंने सीधे-सीधे आम जनों के लोकव्यवहार से उठा लिया था. आइए कुछ उदाहरणों के माध्यम से हम उनके जन की भाषा की बानगी को समझने की कोशिश करते हैं. शुरू करते हैं उनके व्यंग्य लेखन से.

उनका एक व्यंग्य है **'मांगे की किताबें',** जिसमें वो किताबें उधार मांगकर पढ़ने और गायब कर देने वालों पर भयानक तंज कसते हैं. हालाँकि वह अपनी आदत के अनुसार सिर्फ यहीं तक नहीं रुकते बल्कि पढ़ने वाले नव धनाढ्य वर्ग की अच्छी-खासी खबर भी लेते हैं जो अपनी भाषा में कुछ भी पढना कमतर समझाता है और अँग्रेजी की तरफ मुंह बाए खड़ा रहता है. कमोबेश यही हाल आज भी देश में है जबकि यह लेख उन्होंने लगभग ५० साल पहले लिख मारा था. वे लिखते हैं –

अब जो बाकी रह गए उनमें से अधिक संख्या ऐसे लोगों की है जो सादा अँग्रेजी किताबें और पत्रिकाएं खरीदते हैं. वे एक घटिया दर्जे के अँग्रेजी लेखक की किताबें खरीद लेंगे लेकिन 'वर्नाक्युलर लिटरेचर' नहीं खरीदेंगे. इससे उनके मानसिक स्तर के एकदम नीचा गिर जाने का डर रहता है. [*i*]

व्यंग्य और भी मारक हो उठता है जब वह लिखने-पढ़ने वालों की मानसिक दरिद्रता से बढ़कर इसमें समाज की दुर्दशा तक शामिल कर लेते हैं. हम सब आज के समय में हरियाणा में लड़कियों की भयानक कमी और उससे उपजने वाली कुरीति 'पारो' प्रथा को लेकर चिंतित हैं. इस पर आजकल काफी काम हो रहा है हालाँकि साहित्य में इसको लेकर आज भी एक खास तरह की चुप्पी है. कृशन चंदर ने हरियाणा और जाट समुदाय की इस समस्या को ५० साल पहले ही समझ लिया था और उसे इस व्यंग्य के मार्फ़त वो निशाने पर भी लेते हैं. वे लिखते हैं-

तुम मांगे की किताब के विरुद्ध 'जिहाद' करते हो, लेकिन कौन है जो इन मांगे की आत्माओं के लिए जिहाद करेगा. एक बार मैं देहात में घूमने गया. मेरे साथ एक जाट दोस्त था. उसकी उम्र चालीस वर्ष होगी लेकिन उसकी शादी न हुई थी. उसने बताया कि उसके इलाके में औरतों की बड़ी कमी है और इसी कारण वह अभी तक कुंवारा है. लेकिन उसके बड़े भाई की शादी हो चुकी थी. वह प्राय उसी से उसकी पत्नी उधर मांगकर अपना काम चलता था. यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है. अब जब मैं इन बैटन पर विचार करता हूँ तो मुझे लगता है कि मैं किसी देवता से कम नहीं हूँ क्यूंकि भारत की इस स्वर्ग भूमि में जहाँ मांगे की पत्नियाँ भी मिलती हैं, मैं केवल मांगे की किताबों पर संतोष करता हूँ. **[*ii*]**

इसी संकलन में उनका एक दूसरा व्यंग्य है **'अकाल उगाओ'**. यह व्यंग्य पढ़कर लगता है कि वो अपने वक़्त की कम हमारे वक़्त की बात ज्यादा कर रहे थे. हमारे सेष में आज किसानों की आत्महत्या में जिस तरह की बढ़ोतरी हुई है और पिछले 20-25 सालों में जिस तरह देश भर में लाखों किसानों ने आत्महत्याएं की हैं उसे देखकर साफ़ लगता है कि कृशन चंदर आज से ५० साल पहले ही इस देश के हुक्मरानों की मंशा अच्छी तरह भांप गए थे.

'अकाल उगाओ' योजना के संबंध में मैं जितना अधिक सोचता हूँ, मुझे यह योजना उतनी ही अधिक उचित और उत्तम अगति है. यदि हम ज़मींदारों, जरिर्दारों, चोर बाजारी करने वालों और साम्राज्यवादियों को समाप्त नहीं कर सकते तो आओ हम अकाल के द्वारा जनता को समाप्त कर डालें. यदि हम कुछ अकाल ऐसे उत्पन्न कर सकें जैसा कुछ बंगाल में आया था तो हमारी समस्या का हल कुछ ही दिनों में हो सकता है. [iii]

आज हमारे देश में जिस प्रकार किसानों और आदिवासियों का विस्थापन बड़े पैमाने पर किया जा रहा है और केंद्र की नरेन्द्र मोदी सरकार जिस तरह भूमि अध्यादेश लाने और लागू करने पर उतारू है उसे देखकर आश्चर्य नहीं होता कि कृशन चंदर जो भविष्यवाणी तब कर रहे थे वो सही नहीं था. इसी आलेख में वे लिखते हैं-

परंतु बंगाल के अकाल में केवल ३५ लाख लोग मरे थे. यह तो कुछ भी नहीं था. इससे हमारी कठिनाई दूर नहीं होगी. इसलिए इस बार तो एक ऐसा महा बलवान, चिंघाड़ता-दहाड़ता हुआ अकाल लाना चाहिए जिससे कम से कम करोड़ों लोग मार जाएँ. इससे धरती का बोझ हल्का हो जाएगा और हमारे महान देशभक्त जागीरदार, ज़मींदार आदि सूख पूर्वक रह सकेंगे. [*iv*]

हम सब यह जानते हैं कि पूरे देश का हाल आज कमोबेश यही है. और अगर सूरते हाल इसी तरह रहे तो किसानों की आत्महत्यायों की खबरों में और तेजी आने की पूरी सम्भावना है. देश भर में खनिज पदार्थों और जल, जंगल, जमीन की लूट में जिस प्रकार नव उदारवाद के दौर में तेजी आई है उससे समस्या के और भी विकराल रूप ले लेने का खतरा है.

उनका एक और व्यंग्य है **'मेरा मनपसंद पृष्ठ'.** इस व्यंग्य में भी वह शहरी मध्यवर्ग और उच्च वर्ग को अपने निशाने पर रखते हैं. अख़बार में छपे विज्ञापनों के हवाले से वह देश की ऐसी तस्वीर पेश करते हैं जो इस देश का सूरते हाल बयान करता है. वह लिखते हैं –

आजकल मेरा मन पसंद पृष्ठ वह है जो पहला पृष्ठ उलटने के बाद आता है- अर्थात दूसरा पृष्ठ, जिस पर केवल विज्ञापन होते हैं. मेरे ख्याल से यह समाचार पत्र का सबसे सच्चा, सबसे अच्छा और सबसे मनोरंजक पृष्ठ होता है. यह लोगों के व्यापारिक लेन-देन और कारोबार का पृष्ठ है, उनकी निजी व्यस्तताओं का चित्र है, उनके जीवन के ठोस सामाजिक तथ्यों की अभिव्यक्ति है. [*v*]

इस तरह वह समाचारपत्रों की हालात को भी बयान कर देते हैं जिनके लिए समाचार से ज्यादा विज्ञापन मायने रखते हैं. आज के पीत पत्रकारिता के दौर में जब विज्ञापन के तौर पर ख़बरों को परोसा जा रहा हो और हर खबर एक खास उद्देश्य से दिखाई या छुपाई जा रही हो ऐसे में यह कहने की गुंजाइश भी कहाँ रह

जाती है कि कृशन चंदर व्यंग्य के नाम पर अतिरेक का सहारा ले रहे हैं. यह पढ़कर तो लगता है कि वे पहले से समाचारपत्रों की हकीकत से वाकिफ हो चुके थे. यही नहीं वह तत्कालीन समाज को भी नहीं बख्सते जब वह समाज की भेड़चाल संस्कृति को निशाना बनाते हुए लिखते हैं-

एक सुन्दर कुत्ता है जो १५० रुपए में बिक रहा है. शेक्सपियर के नाटकों का सचित्र संस्करण है जो 10 रुपए में बिक रहा है. यह मैंने बहुधा देखा है कि कुत्तों के दाम पुस्तकों से कहीं अधिक होते हैं. मैंने यह भी देखा है कि मोटरों और कुत्तों के बेचने और खरीदने वाले तो बहुत होते हैं परंतु पुस्तकों के केवल बेचने वाले होते हैं, खरीदनेवाला कोई नहीं होता. इस कॉलम के विज्ञापनों में हमें अपने देश की महान संस्कृति का प्रतिबिम्ब मिलता है. [*vi*]

यह करारा व्यंग्य न सिर्फ तत्कालीन बल्कि हमारे वर्तमान समाज पर भी उतना ही सटीक बैठता है. जिस तरह का आधुनिक शहरी समाज हमारे देश में विकसित हुआ है वह बिल्कुल ऐसे ही व्यवहार करता है जैसा कि वर्षों पहले लेखक ने महसूस किया था. हमने ऐसा शिक्षित समाज विकसित किया है जिसके लिए भौतिक जरूरतें तो महत्त्वपूर्ण हैं लेकिन वह किताब और साहित्य की जरूरत अपने जीवन में महसूस नहीं करता.

अपने एक और सुन्दर और सहज व्यंग्य **'मेढक की गिरफ्तारी'** में वह मेढकों के मार्फ़त मानव समाज में फैले झूठ, मक्कारी, हिंसा और लूट की भरपूर खबर लेते हैं. वह इंसानी सभ्यता की तमाम बुराइयों को एक मेढक के अनुभव के दायरे से देखने की कोशिश करते हैं और जतलाते हैं कि सृष्टि के इन छोटे जीवों से भी हम कितने गए-गुजरे हो गए हैं. हालत यह हो गई है कि जिन जंतुओं को हम हिकारत की नजर से देखते हैं उनकी निगाह में हम खुद बेहद ही गिरे हुए हैं.

परंतु मनुष्यों में ऐसा ही होता है. एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को खा जाता है, उसका लहू पीता है, उसे दस बनाकर रखता है और जो व्यक्ति यह पाप जितनी अधिक मात्रा में करता है वह उतना ही बड़ा समझा जाता है. [*vii*]

वह इंसानों द्वारा इंसानों के शोषण को दोयम दर्जे का करार देते हुए आगे लिखते हैं –

उनके यहाँ जो आदमी जितना अधिक दूसरों का उपयोग अपने लाभ के लिए करे वह उतना ही अधिक बुद्धिमान और चतुर समझा जाता है. [*viii*]

कृशन चंदर यहीं तक नहीं रुकते बल्कि वह इंसानी सभ्यता की समीक्षा करते हुए इंसानों की मक्कारी और दोगलेपन को उजागर करते हुए लिखते हैं कि इंसान जो बोलते हैं उसका वही मतलब नहीं होता क्यूंकि वह जो कहना चाहते हैं वो बात वो मन के अंदर ही दबा जाते हैं. कृशन चंदर लिखते हैं-

मनुष्य की दो भाषाएँ होती हैं – एक तो वह जिसे वो बोलते हैं और दूसरी वह जिसे वे मन में रखते हैं. वे शब्द जो उनके मन में होते हैं, प्राय जिह्वा पर नहीं आते और जो शब्द वे जिह्वा से बोलते हैं, समझ लीजिए कि वे उनके मन की वास्तविक भावना के विरुद्ध है. [*ix*]

इस तरह देखें तो मेढकों के मार्फ़त वो इंसानी सभ्यता को बिल्कुल नंगा खड़ा कर देते हैं जो इंसानों द्वारा इंसानों के शोषण और उपयोग पर टिकी है और कैसे इन्सान एक-दूसरे को ही देखना नहीं चाहता और उसका अहित करने में अपनी भलाई समझता है. हालाँकि यह अनुभव मेढक को प्रभु वर्ग के बीच रहकर होता है. लेकिन यही इस दुनिया की हकीकत है इस बात से जाहिर है कि कोई मुंह नहीं चुरा सकता.

उनके व्यंग्य लेखों के बाद अब उनकी कहानियों पर आते हैं. उन्होंने तीन सौ से अधिक कहानियां लिखी हैं और उन कहानियों में प्रेम और रोमांस की कहानियों से लेकर मानव समाज की मक्कारी, हिंसा और धोखे की कहानियों से लेकर पता नहीं और कितने रंग शामिल हैं. उन्होंने आजादी के पहले के समय में स्वतंत्र संग्राम की कहानियां भी लिखी हैं और दोनों धर्मों के लोगों की कुर्बानियों का ज़िक्र किया है वहीँ आज़ादी के बाद दोनों ही देशों में फैले धार्मिक आग और उसमें झुलसते दोनों ही धर्मों के लोगों को भी अपने जिंदा शब्दों में दर्ज किया है. उनकी एक बहुत ही मार्मिक कहानी है **‘पेशावर एक्सप्रेस’.** इस कहानी में वह भारत के बंटवारे के बाद हुए हैवानियत की ऐसी जीना तस्वीर पेश करते हैं कि पढ़ने वालों की रूह कांप जाती है. यह कहानी उन्होंने पेशावर एक्सप्रेस के मार्फ़त पेश की है और जिन शब्दों में इसका अंत किया है वह इस कहानी के मर्म को सामने लाने के लिए काफी है.

एक लम्बे अंतराल के बाद मैं वापस बम्बई आई हूँ. यहाँ मुझे स्नान कराकर शेड में खड़ा कर दिया गया है. मेरे डिब्बों में अब शराब की बफारें नहीं हैं. खून के छींटें नहीं हैं. जंगली खुनी कहकहे नहीं हैं. लेकिन रात के एकांत में जैसे भुत जाग उठते हैं, मृत आत्माएं जाग जाती हैं, और घायलों की चीखें, औरतों की, बच्चों की पुकार हर तरफ वातावरण में गूंजने लगती हैं. और मैं चाहती हूँ कि मुझे कोई इस यात्रा पर न ले जाए. मैं शेड से बाहर निकलना नहीं चाहती. मैं इस भयानक यात्रा पर फिर से जाना नहीं चाहती. अब मैं उस समय जाउंगी जब मेरी यात्रा पर दोनों तरफ सुनहरे गेहूं के खेत लहलहाएंगे. $[x]$

भारत विभाजन और उस दौर में हुई हिंसा की सबसे जीवंत कहानियां मंटो के बाद कृशन चंदर के यहाँ ही पाई जाती हैं. उनकी कहानियां जानवर में तब्दील हो गए मानवों की वैसी कहानियां कहती हैं जो दोनों ही पक्षों की दरिंदगी को सामने लाने का काम करती हैं और इस तरह से 'धर्म' और 'धार्मिकता' के ऊपर प्रश्नचिन्ह खड़े करती हैं जो इंसान को इंसान नहीं बल्कि जानवर और हैवान बनाने का काम करता है.

उनकी कहानियों का एक रूप वह भी है जहाँ वह भारतीय कामगार वर्ग के त्रासद जीवन को अपनी कहानियों का विषय बनाते हैं और उसे बहुत ही संजीदगी से लोगों के सामने पेश करते हैं. 'महालक्ष्मी का पुल', 'एक फर्लांग लम्बी सड़क', 'कालू भंगी' आदि ऐसी ही कहानियां हैं जो भारतीय समाज में कामगार तबके की अमानवीय जीवन व्यवस्था और उन्हें लेकर प्रभू वर्ग की बेरुखी को उजागर करते हैं. **'महालक्ष्मी का पुल'** कहानी में वह सूख रही साड़ियों के मार्फ़त शहरी गरीब महिलाओं और पुरुषों के कठिन जीवन को उधेड़ते हैं जो उनकी साड़ियों की तरह ही तार-तार है. इन तमाम लोगों को उम्मीद है कि आजादी के बाद आई जवाहरलाल नेहरु की सरकार इनका कुछ भला करेगी लेकिन वादे के अनुरूप नेहरु का काफिला वहां बिना रुके गुजर जाता है जो दर्शाता है कि न तो पुरानी शासन व्यवस्था में इनके लिए कोई जगह थी न ही नई शासन व्यवस्था में इनके लिए कोई जगह है. वे लिखते हैं-

परंतु प्रधानमंत्री की गाड़ी नहीं रुकी. वे इन छह साड़ियों को नहीं देख सके और भाषण करने को चौपाटी चले गए. इसीलिए जब मैं आपसे कहता हूँ कि यदि आप कभी गाडी में उधर से गुजरें तो आप इन छह साड़ियों को जरूर देखिए जो महालक्ष्मी के पुल के बाईं ओर लटक रही हैं. और फिर इन रंग-बिरंगी रेशमी साड़ियों को भी देखिए जिन्हें धोबियों ने इसी पुल के देन ओर सूखने के लिए लटका रखा है और जो उन

घरों से आईं हैं जहाँ ऊँची-ऊँची चिमनियों वाले कारखाने के मालिक या बड़े-बड़े वेतन पाने वाले रहते हैं. आप उस पुल के बाएं और दायें दोनों ओर अवश्य देखिए और फिर अपने आप से पूछिये कि आप किस ओर जाना चाहते हैं. देखिए मैं आपसे समाजवादी बनने के लिए नहीं कह रहा हूँ. मैं आपको वर्ग संघर्ष की प्रेरणा नहीं दे रहा हूँ. मैं तो केवल यह जानना चाहता हूँ कि आप महालक्ष्मी के पुल की दाई ओर हैं या बाईं ओर. [xi]

इस बात में तो कोई दो राय हो ही नहीं सकती कि कृशन चंदर एक प्रगतिशील और जनवादी चेतना संपन्न लेखक थे. इस एक कहानी मात्र से वह अपनी पक्षधरता न सिर्फ स्पष्ट कर देते हैं बल्कि वह पाठकों से आसानी से पूछ भी लेते हैं कि वो किस तरफ रहना पसंद करेंगे. 'एक फर्लांग लम्बी सड़क', 'कालू भंगी' और 'पांच रुपए की आजादी' आदि कहानियां भी उनके इसी तेवर की कहानियां हैं.

उनके उपन्यासों का ज़िक्र करें तो सीधे-सीधे मानवीय संवेदना को उकेरने और सामाजिक-धार्मिक-रूढिगत-राजनीतिक विसंगतियों को उभारने वाली कहानियां हैं जहाँ वह समाज को पूरी तरह नंगा खड़ा कर देते हैं. उनके प्रसिद्ध उपन्यासों यथा 'एक वायलिन समुन्दर किनारे', 'एक करोड़ की बोतल', 'एक गदहा नेफा में', 'एक गदहे की आत्मकथा' और 'एक गदहे की वापसी' से तो हम सभी वाकिफ हैं ही. मैं यहाँ दो उदाहरण उनके दो अन्य उपन्यासों 'दादर पुल के बच्चे' और 'गद्दार' से देकर अपनी बात ख़त्म करूँगा.

अपने छोटे पर बेहद ही उम्दा और आँखें खोल देने वाले उपन्यास 'दादर पुल के बच्चे' में वह हमारे समाज के दोगलेपन को और भी उजागर करते हैं. वह भी शहरी गरीब बच्चों के ज़िन्दगी को करीब से दिखाते हुए कि कैसे बच्चों को भगवान् का दर्जा देने वाला समाज उन्हीं बच्चों से कैसे-कैसे वहशीपने वाला काम लेता है और उनके बचपन से किस तरह खेलता है. इस कहानी को वह भगवान् के मार्फ़त बढाते हैं और दर्शाते हैं कि एक रात भगवान् उनके पास आकर बंबई के बच्चों से मिलवाने की इच्छा करते हैं. लेखक उनकी मदद करता है और उनकी बनाई दुनिया में भगवान् की मूरत माने जाने वाले बच्चों का सूरते-हाल बयान करता है. वह बच्चों में ही भगवान् देखते हैं और ऐसा नहीं कर पाने वाले को उलाहना देते हुए कहते हैं-

और बातों की तो मैं सौगंध नहीं खा सकता, किंतु एक बात की सौगंध अवश्य खा सकता हूँ. मैंने भगवन को देखा है. अवश्य देखा है. संभव हो आपने भी देखा हो, परंतु पहचाना न हो. [*xii*]

वह दुनिया बनाने वाले भगवान को भी बच्चों की इस दुर्दशा के लिए कटघरे में खड़ा करते हैं और उसे उसकी दुनिया की गन्दी और भयावह हकीकत से परिचित करवाते हैं और इसी मार्फ़त वह समाज को भी झकझोरने का काम करते हैं. उपन्यास का अंत आते-आते वह भगवान को खुद ही बम्बई के दानवीय हकीकत का शिकार बना देते हैं और इस तरह भगवान् और बच्चे को एक कर उसकी दुर्दशा दिखालते हुए कहते हैं-

जीवन में अंतिम बार जब मैंने भगवान् को देखा तो वे छह वर्ष के एक अंधे, कमजोर बच्चे थे. और शाम की लालिमा के ढलते सायों में दोनों हाथ फैलाये हुए रोते हुए पुल पर खड़े भीख मांग रहे थे. [*xiii*]

मेरे ख्याल से हमारे देश में शहर में फुथपाथ पर रहने और गरीबी में जीवन बसर करने वाले बच्चों के ऊपर इससे उम्दा उपन्यास या कहानी किसी और ने नहीं लिखी है. इस कहानी के मार्फ़त वह इंसानी जीवन के तमाम खोखले आदर्शों की पोल खोल देते हैं और बताते हैं कि जो समाज अपने बच्चों की फिक्र नहीं कर सकता उसका भविष्य निश्चित तौर पर उन्नत तो नहीं ही हो सकता है.

उनके दूसरे उपन्यास **'गद्दार'** पर बात करते हुए अपनी बात को अंजाम तक पहुंचाउंगा. इस उपन्यास की पृष्ठभूमि में भी भारत-पाक विभाजन और दंगे हैं जिनमें हजारों-हजार लोगों की जानें जाती हैं, इंसानियत शर्मसार कर देने वाले दृश्य उभरते हैं और मानवीयता को क्रूर क़दमों तले स्त्री के सम्मान की तरह रौंदा जाता है. हिंसा और प्रतिहिंसा से लबरेज इंसान अपने धर्म के नाम पर इतना अँधा हो चूका है कि उसे सिर्फ और सिर्फ बदला दिखता है. ऐसे में अपना सब कुछ लुटाकर पाकिस्तान से भारत आया युवक अपने और अपने अप्रिवार के साथ हुई ज्यादतियों का बदला पाकिस्तान जा रहे शरणार्थियों से लेने निकल पड़ता है लेकिन वह उस खुनी खेल का हिस्सा नहीं बन पाता. उलटे अगली सुबह जब वह उस जगह पर जाता है जहाँ कल रात कत्लोगारत को अंजाम दिया गया तो वहां उसे एक रोता हुआ बच्चा मिलता है जो किसी तरह बाख गया है. वह उसे लेकर वहां से निकल भागता है और उसे पालने का प्रण लेता है. और उम्मीद करता है

कि मानवता और मनुष्यता इस संसार में लाख धक्के के बाद भी बची रहेगी और एक दिन ऐसा भी आएगा जब इसका परचम लहराएगा.

वह दिन जरूर आएगा जब ..... अपनी आदिम प्रवृतियों पर काबू पाता हुआ प्रकृति के रहस्य का वक्ष चीरकर मनुष्यता की उज्जवल मंजिल को छू लेगा. वह दिन जरूर आएगा, जरूर आएगा.[xiv]

इस प्रकार से देखें तो कृशन चंदर अपने लेखन की मार्फ़त अंततः मनुष्यता को जीवित रखने का संघर्ष कर रहे होते हैं और इसके लिए प्रगतिशील और जनवादी विचार को सबसे उपयुक्त पाने के कारण वह अपना विचार प्रकट करने से भी नहीं घबराते हैं. उनके लेखन में कई बार लगता है कि जैसे वो जान बुझकर सामंजस्य बिठाने की कोशिश कर रहे हैं और शायद इसे ही आलोचकों ने उनका फार्मूलावद्ध लेखन कहा हो लेकिन मानवीय दृष्टि से देखें तो तत्कालीन समाज को बेहतर बनाने के लिए हमें ऐसे ही मिसालों की जरूरत थी जिसे वे अपने अफसानों के माध्यम से लेकर सामने आते हैं. कृशन चंदर मेरी दृष्टिकोण में भारतीय जन की भाषा में लिखने वाले जनता के चितेरे रचनाकार हैं जिनके अफसानों में भारतीय जनता के कई अक्स साँस लेते हैं और अपना प्रतिरोध इस अमानवीय समाज में उनके अफसानों के माध्यम से दर्ज करते हैं. प्रगतिशील और जनवादी चेतना के रचनाकार तो वो घोषित तौर पर हैं हीं लेकिन वह अपने पूरेपन में मनुष्यता की गरिमा के रचनाकार हैं और इस तरह से वह जनता के रचनाकार हैं.

संदर्भिका

[i] चंदर, कृशन. 'मांगे की किताबें': स्वराज के पचास वर्ष बाद, नवदीप प्रकाशन, नई दिल्ली, २०१३, पृष्ठ संख्या-83.

[ii] वही, पृष्ठ संख्या-84.

[iii] चंदर, कृशन. 'अकाल उगाओ': स्वराज के पचास वर्ष बाद, नवदीप प्रकाशन, नई दिल्ली, २०१३, पृष्ठ संख्या-26.

[iv] वही.

[v] चंदर, कृशन. 'मेरा मन पसंद पृष्ठ': स्वराज के पचास वर्ष बाद, नवदीप प्रकाशन, नई दिल्ली, २०१३, पृष्ठ संख्या-8.

[vi] वही, पृष्ठ संख्या-11.

[vii] चंदर, कृशन. 'मेढक की गिरफ्तारी': स्वराज के पचास वर्ष बाद, नवदीप प्रकाशन, नई दिल्ली, २०१३, पृष्ठ संख्या-33.

[viii] वही.

[ix] वही, पृष्ठ संख्या-34.

[x] चंदर, कृशन. 'पेशावर एक्सप्रेस': पांच बेहतरीन कहानियां, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, २०१३, पृष्ठ संख्या-50-51.

[xi] चंदर, कृशन. 'महालक्ष्मी का पुल', मेरी प्रिय कहानियां, राजपाल प्रकाशन, नई दिल्ली, २०१४, पृष्ठ संख्या-93.

[xii] चंदर, कृशन. 'दादर पुल के बच्चे', एशिया पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ संख्या-80.

[xiii] वही.

[xiv] चंदर, कृशन. 'गद्दार', भारतीय जन सहयोग परिषद्, नई दिल्ली, 2013, पृष्ठ संख्या-79.

Citation: प्रभाकर, मृत्युंजय (2017). जन की भाषा में जन का रचनाकार: कृशन चंदर, HindiTech: A Blind Double Peer Reviewed Bilingual Web-Research Journal, 8 (2), 27-40. URL:
https://hinditech.in/jan-ki-bhasha-men-jan-ka-rachnakar-krishan-chandar/